

द्वितीय अध्याय

धर्म विवेचन

धर्म शब्द का विवेचन ऋग्वेद में जगन्निर्वाहक नियमों का समूह कहा है।¹ तैत्तिरीय-आरण्यक² में धर्म को सबसे श्रेष्ठ कहा है। धर्म पर ही संसार टिका है तथा धर्म का अनुसरण प्रजा करती है। धर्म से पाप निवृत्त होते हैं। धर्म शब्द ऐसे तत्त्वों को दर्शाता है जो समस्त पृथिवी या उसके निवासियों को धारण करते हैं।³

‘धर्म’ शब्द का विवेचन वैदिक संहिताओं तथा उनके बाद वाले साहित्यों में पर्याप्त मात्रा में देखने को मिलता है। परवर्ती साहित्य में धर्म शब्द का वह अर्थ दिखलाई नहीं देता जैसा कि वैदिक संहिताओं में उपलब्ध होता है।⁴ अथर्ववेद में पृथिवी के ग्यारह धारक तत्त्वों की गणना ‘पृथिवी धारयन्ति’ कह कर की गई है।⁵ वाजसनेयि संहिता में धर्म शब्द का

1 यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानः सचन्तः यत्र पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः ॥ ऋग्वेद 1.164.50

2 धर्मो विश्वस्य जतगः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं

प्रजा उपसर्पन्ति धर्मेण पापमपनुदति धर्मे

सर्वं प्रतिष्ठितं तस्याद्धर्मं परमं वदन्ति ॥ तै० आरण्यक 10/ 63 पृ० 381

3 तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ऋग्वेद 10.90.16, वाजसनेयि संहिता 31.16, पृ० 528

4 सं० वा० का वृ० इति०, पृ० 180

5 (क) सत्यं बृहद्ऋतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवी धारयन्ति ।

सा नो भूतस्यभव्यस्य पत्न्युरु लोकं पृथिवी नःकृणोतु ॥ अथर्व० पृथिवी सूक्त क०12.1-1

(ख) रश्मिना सत्याय सत्यं जिन्व प्रेतिना धर्मणा धर्मजिन्वान्वित्या दिवा दिव

जिन्व सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व प्रतिधिना पृथिव्या पृथिवी जिन्व इत्यादि ।

शु० यजु० संहिता वाजसनेयि मा० 15. 6, पृ० 277

प्रयोग धार्मिक विधि, धार्मिक क्रिया, शाश्वत नियम व आचरण के नियम का ज्ञान आदि के लिए हुआ है।¹

हिन्दी विश्वकोष² में इसका अर्थ सुकृत व कल्याणकारी कर्म किया गया है। तैत्तिरीय³ संहिता में धर्म के साथ-साथ तपस्या का लोकोपयोगिता के सन्दर्भ में वर्णन है कि वही तपस्वी है जो अपने-आप को धर्म और राष्ट्र के लिए समर्पित करता है। जब प्राचीन साहित्य 'ऋग्वेद' को देखा जाये तो यह मालूम होता है कि इस शब्द का प्रयोग संज्ञा या विशेषण के रूप में हुआ है। प्रायः यह शब्द 'धर्मन्'⁴ है और इसका प्रयोग नपुंसकलिङ्ग में हुआ है यथा 'सनता धर्माणि'⁵ 'प्रथमा धर्मा',⁶ 'धर्मिणामिन्द्रा वरुणा विपश्चिता व्रता रक्षथे',⁷ 'अचिन्ती यत्तवा धर्मा युयोपिम मा न स्तस्मादेनसो देव रीरिषः'⁸

अथर्ववेद में धर्म शब्द का अर्थ पुण्यफल प्रतीत होता है। "ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च"⁹ उपनिषद् काल में 'धर्म' द्वारा वर्ण और आश्रमों के आचारों एवं संस्कारों का स्पष्ट बोध होता था।¹⁰

1 नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत् आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः । जङ्घाभ्यां पदभ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ॥ वाजसनेयि संहिता ॥ 20.9, पृ० 386

नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं नरिष्ठायै भीमलं नर्माय रेभ ॐ हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीषस्त्वं प्रमदे कुमारी पुत्रं मेधायैरथकारं तक्षाणम् ॥ वाजसनेयि सं० 30-6, पृ० 520

2 हिन्दी विश्वकोष, भाग II, पृ० 100

3 तपसा चाऽगच्छत तस्मात् त्रिष्टुभो लोके माध्यन्दिने सवने दक्षिणा नीयन्त एतत् खलु वाव तप इत्याहुर्यः स्वं ददाति इत्यादि एव ददत्युत यद्वहुतया । तै० सं० 6.1.6 .:

4 'पितुं नुस्तोषं महो धर्माणं तविषीम्', ऋग्वेद 1.187.1, शु० यजु० 34.7

5 ऋग्वेद 3.3.1

6 ऋग्वेद 3.17.1,

7 ऋग्वेद 5.63.7

8 ऋग्वेद 7.81.5

9 अथर्व० 9.9.17

10 त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथम तपः इत्यादि छान्दोग्योपनिषद् 2.23

मैक्समूलर ने भी भारतीय धर्म की विशेषता को ध्यान में रखकर व उससे प्रभावित होकर धर्म की सराहना 'ह्वाट कैन इण्डिया टीच अस' नामक पुस्तक में की है।¹

धर्मसूत्रों और स्मृति ग्रन्थों में जो धर्म का विवेचन किया गया है उसके अनुसार चार प्रकार के धार्मिक नियमों का विभाजन किया जा सकता है।²

1. वर्ण-धर्म
2. आश्रम-धर्म
3. नैमित्तिक-धर्म जैसे प्रायश्चित्त।
4. गुण-धर्म, राजा के कर्त्तव्य। मनुस्मृति में धर्म को व्यापक अर्थ में ग्रहण किया गया है। स्थूल रूप से उसे³ अर्थों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. आध्यात्मिक 2. व्यवहारिक।

आध्यात्मिक क्षेत्र में आत्मा के उपकारक निःश्रेयस् सिद्धि अर्थात् मोक्ष प्राप्ति कराने वाले आचरण को धर्म कहते हैं।³

जैमिनि⁴ ने पूर्व मीमांसा सूत्र में कहा है कि वेद में बताये गये प्रेरक नियम और लक्षण धर्म हैं। उन नियमों का आचरण ही धर्म का आचरण है। व्यवहारिक क्षेत्र में त्रिविध आत्मिक, मानसिक, शारीरिक उन्नति कराने वाले मानवत्व, देवत्व का विकास कराने वाले उत्तम सुख साधक, श्रेष्ठ व्यवहारिक कर्त्तव्य और विधान धर्म कहलाते हैं। ये व्यवहारिक क्षेत्र होने के कारण कर्म हैं। इसमें निम्न प्रमाण भी द्रष्टव्य है।

1 "If I were asked under what sky the human mind has fully developed some of its choicest gifts, has most deeply pondered on the greatest problems of life, and has found solutions of some of them which well deserve the attention even of those who have studied Plato and Kant - I should point to India." What Can India Teach Us? p. 6.

2 गौ० ध० सू० धर्म विवेचन, भूमि० पृ० 16

3 वेदाभ्यासः तपः ज्ञानं इन्द्रियाणां च संयमः।

धर्म क्रिया आत्मचिन्ता च निःश्रेयसकरं परम॥ मनु स्मृ० 12/83

4 "चोदना लक्षणोऽर्थो धर्मः", जैमिनि पूर्वमीमांसा 1.1.2

- (अ) 'न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' ¹
 (आ) 'योषितां धर्ममापदि' ²
 (इ) 'एषः धर्मः स्त्रीपुंसयोः' ³
 (ई) 'द्यूत धर्म निबोधतः' ⁴
 (उ) 'दण्डं धर्म विदुः बुधाः' ⁵
 (ऊ) 'राजधर्मान्-प्रवक्ष्यामि' ⁶
 (ए) 'विवाह-ब्राह्मो धर्मः देव धर्मम्, आर्षधर्मः आसुरधर्मः ।' ⁷

वैशेषिक ⁸ दर्शनकार ने भी कहा है कि जिससे आत्म-उन्नति और मोक्ष की प्राप्ति हो वही धर्म है। वसिष्ठ-धर्म-सूत्रकार के अनुसार श्रुति और स्मृति द्वारा जो आचरण नियम बनाये गए हैं उन्हें धर्म कहा गया है। यदि वे नियम न मिले तो शिष्ट पुरुषों के आचरण को धारण करना चाहिए। ⁹

1 सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।

प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ मनु स्मृ० ४/१३८

2 एतद्वः योषितां धर्ममापदि । मनु स्मृ० ९/५६

3 मनु स्मृ०, ९/२५

4 मनु स्मृ०, ९/२२०

5 मनु स्मृ०, ७/१८

6 मनु स्मृ०, ७/१

7 मनु स्मृ०, ३/२५

8 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः सः धर्मः वैशेषिक दर्शन, १.१.१.

9 (१) श्रुतिस्मृति विहितो धर्मः तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम् ।

शिष्टः पुनरकामात्मा ॥ व० ध० सू० १.४.६

(२) अथ यदि ते कर्म विचिकित्सा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् । ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः । युक्ता आयुक्ताः । अलूक्षा धर्मकामाः स्युः । यथा ते तत्र वर्तेरन् । तथा तत्र वर्तेथाः । अथाभ्याख्यातेषु ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः । युक्ता आयुक्ताः । अलूक्षा धर्मकामाः स्युः । यथा ते तेषु वर्तेरन् तथा तेषु वर्तेथाः ।
 तै० उ० १.११

वैदिक साहित्य में लोक-जीवन के मंगलमय सत्कर्म के प्ररेक के रूप में धर्म भावना मूलतः अभिव्यक्त हुई है। पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि का आधार धर्म को ही माना गया है। धर्म एवं नीति, सम्बन्धी विश्व कोष¹ में धर्म का अर्थ पवित्र नियम तथा कर्तव्य दिया है। गौतमधर्मसूत्र में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि वेद धर्म का मूल है 'वेदो धर्म मूलम्'² सायणाचार्यकृत³ ऋग्वेद भाष्य भूमिका में धर्म की महिमा को पुरुषार्थ कहा है जिस प्रकार निर्बल व्यक्ति राजा की सहायता से विजयी होता है उसी प्रकार धर्म के प्रभाव से धर्मात्मा विजयी होता है। सृष्टि-प्रकारण में वाजसनेयि शाखा में लिखा है। 'तच्छ्रेयोरूपमत्यसृजत० यथा राज्ञा एवम्'⁴ मीमांसा दर्शन के प्रवर्तक⁵ ने प्रारम्भ में 'अथातो धर्म जिज्ञासा' द्वारा धर्म के स्वरूप पर विचार करते हुए कहा है कि 'य एव श्रेयस्करः स एव धर्मशब्देनोच्यते' अर्थात् जो कल्याण-कारक हो वही धर्म है।

उपर्युक्त वर्णन से यही ज्ञात होता है कि भारतीय धर्म का मूल वेद ही है। भले ही धार्मिक स्वरूप में आज अनेक विभिन्नतायें आ गई हो। वेद और धर्मशास्त्रों पर विचार करने से यही ज्ञात होता है कि धर्म के द्वारा मनुष्य नैतिकता, सामाजिकता, व्यवहारिकता, कानून और शासन तथा अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

धर्म का तात्पर्य

धारणार्थक 'धृ' धातु से मनिन् प्रत्यय या 'धृञ्-धारणे' धातु से 'अतिस्तुसुहुसृष्ट०.....'⁶ सूत्र से मन् के योग में 'धर्म' शब्द निष्पन्न होता है।

1 एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, भाग 4, पृ० 702

2 गौ० ध० सू० 1.1 -1

3 ऋग्वेद भाष्य भूमि०, पृ० 108

4 बृह० उप० 1.4.14

5 मीमांसा दर्शन सूत्र भाष्य 1.2,

6 उणादि सूत्र 1/140

जीवन मूल्यों के परिवर्तन के साथ इस पद का व्यवहार हुआ है। 'धारणात् धर्म इत्याहुः ध्रियन्ते अनने लोकः'¹ आदि व्युत्पत्तियों के अनुसार जिसे आत्मोन्नति और उत्तम सुख के लिए धारण किया जाए अथवा जिसके द्वारा लोक को व्यवस्था या मर्यादा के अन्तर्गत रखा जाए उसे धर्म कहते हैं। अन्ततः धर्म शब्द की परिणति मानवीय अधिकारों तथा कर्तव्यों के रूप में हुई है।²

हिन्दू धर्म का मनुष्य के जीवन के साथ जो तादात्म्य है उससे पाश्चात्य विद्वान् और धर्म के चिन्तक भी प्रभावित हुए हैं।³ इस विषय में प्रो० मैक्समूल्लर ने अपने विचार कहे हैं।

'प्राचीन भारतवासियों के लिए सबसे पहले धर्म अनेक विषयों के बीच एक रुचि का विषय नहीं अपितु वह सब की आत्म समर्पण करने वाली विधि थी। इसके अन्तर्गत न केवल पूजा और प्रार्थना आती थी, अपितु वह सब भी आता था जिसे हम दर्शन, नैतिकता, कानून और शासन कहते हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन उनके लिए एक धर्म था और दूसरी चीजें मानो इस जीवन की भौतिक आवश्यकताओं के लिए निमित्त मात्र थी।'⁴

वैदिक चिन्तन परम्परा में निःश्रेयस् की प्राप्ति के लिए⁵ वैदिक ज्ञान तथा धार्मिक अनुष्ठानों को आवश्यक माना है। आचार्य मैकडानल के अनुसार भारतीय वाङ्मय ग्रीक साहित्य की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट है तथा धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र में इसका उत्कर्ष अत्यधिक है।⁶

1 निरुक्त 12.4.41, सं० हिन्दी कोष, पृ० 489, ऋग्वेद 10.5.6

2 ध० शा० का इति० प्रथम खण्ड, पृ० 3

3 बौ० ध० सू० की प्रस्ता० पृ० 17

4 इण्डिया व्हॉट कैन इट् टीच अस, (हिन्दी अनुवाद) पृ० 107

5 वैदिक धर्ममानुष्ठानात् पुरुषो निःश्रेयानर्थफलवान् इत्यैषः वैदिक सिद्धान्तः। ऋक् प्रातिशाख्य वर्गद्वय वृ० पृ० 24

6 सं० सा० का इति० ए० ए० मैकडानल आमुख, पृ० 5

धर्म का स्वरूप

भारतीय संस्कृति और धर्म पर भिन्न-भिन्न विचारकों ने कई तरह दृष्टिपात किया है। कुछ तो इसके स्वरूप को समझे परन्तु कुछ ने इसके वास्तविक तत्त्व को जाने बिना इसकी आलोचना ही की है। वास्तविक रूप से भारतीय धर्म या हिन्दू धर्म को किसी एक शब्द द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता।¹ संहिताओं के परवर्ती काल में वर्णाश्रम की विधियों में 'धर्म' शब्द का अर्थ प्रयुक्त होने लगा।² वसिष्ठ ने भारतीय स्मृतिकारों के साथ स्वर में स्वर मिलाकर धर्म की घोषणा की है।

‘धर्म चरत माऽधर्म सत्यं वदत मानृतम्

दीर्घं पश्यत मा ह्रस्व परं पश्यत माऽपरम्।।³

धर्म की रक्षा करने पर धर्म मनुष्य की रक्षा करता है। 'धर्मो रक्षति रक्षतः'⁴

धर्महीन उच्छृङ्खल जीवन विनाश की ओर ले जाता है। धर्म ही मनुष्य को सुनिश्चित मार्ग पर ले जाता है जिस पर चलकर मनुष्य अपना आत्मिक विकास करते हुए जीवन के कर्तव्यों का पालन कर सकता है।⁵ छान्दोग्य-उपनिषद् में धर्म के तीन स्कन्ध गिनाये हैं। इनमें यज्ञ, अध्ययन तथा दान है। प्रथम तप, द्वितीय ब्रह्मचर्य कुलवासी, तृतीय आचार्य कुल वास।⁶ धर्म लौकिक जीवन की समृद्धि एवं कल्याण के साथ-साथ परलोक की मंगलमय कामना भी पूरी करता है। इस सन्दर्भ में डॉ० उमेश चन्द पाण्डेय ने आपस्तम्बधर्मसूत्र की भूमिका में कवि वर्दस्वर्थ के विचारों को उद्धृत किया है —

1 आ० ध० सू० प्रस्ता, पृ० 29

2 बौ० ध० सू० प्र०, पृ० 14

3 व० ध० सू० 30.1

4 धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षतः।

तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो हतोऽवधीत्।। मनु स्मृ० 8/15

5 गौ० ध० सू० भूमि०, पृ० 16

6 त्रयोधर्म स्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति, प्रथमस्तप एव, द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी, तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन् सर्वे एते पुण्यलोका भविन्त। छा० उ० 2/23

“Those obstinate questionings of sense and outward things, falling from us, vanishings, blank misgivings of a creature moving about in worlds not realised”¹ मनु ने तो धर्म विषय में कहा है कि “धर्म जिज्ञासमानानां परं श्रुतिः तथा वेदों को सभी धर्मों का मूल कहा है।² धर्म मानव की शक्तियों को संकुचित नहीं करता बल्कि वह मनुष्य को सत्यता की शिक्षा देता है तथा उदार बनाता है। धर्म सिखाता है कि हीन वस्तु को देखकर अपना विचार हीन मत बनाओं बल्कि श्रेष्ठ वस्तु देखकर जीवन का लक्ष्य सदा ऊँचा से ऊँचा बनाये रखो।³

सत्यार्थ प्रकाश में महर्षि दयानन्द ने कहा है कि “धर्म पक्षपातरहित न्यायचरण, सत्य का ग्रहण, असत्य का परित्याग, वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा का पालन, परोपकार सत्यभाषणादि लक्षण सभी मनुष्य मात्र के लिए एक ही है।”⁴ भारतीय धर्म मनुष्य जीवन के सभी संस्कारों व कर्तव्यों को धारण कराता है।

आचरण

भारतीय संस्कृति का मूल आधार आचरण ही है। आचरण से ही मनुष्य का मूल्याङ्कन होता है उसकी मानवता और पात्रता आचरण पर निर्भर करती है। आचरण ही धर्म का मूल है। आपस्तम्बधर्मसूत्र⁵ में कहा गया है कि मनुष्य को अपना आचरण ऐसा बनाना चाहिए जिसे सभी देशों में विनयशील समझा गया हो। इस आचरण से ही उसकी जितेन्द्रियता, दम्भहीनता, बुद्धिमता आदि विशिष्टता की पहचान को हमारे आर्यजनों ने

1 आ० ध० सू० प्रस्ता० पृ० 22

2 मनु स्मृ० 2/13

3 “ दीर्घं पश्यत मा ह्रस्वं परं पश्यत मापरम्” । व० ध० सू० 30/1

4 सत्यार्थ प्रकाश, पृ० 84

5 सर्वजनपदेष्वेकान्तसमाहितमार्याणां वृतं इत्यादि । आ० ध० सू० 1.7.20.8

स्वीकार किया है। मनु,¹ वसिष्ठ,² गौतम³ आदि सभी धर्मज्ञों ने इस आचरण को परम धर्म कहकर हीन आचरण को कोई सुख प्राप्त नहीं होता। धर्म का आचरण सांसारिक उद्देश्य से अर्थात् यश, लाभ, सम्मान प्राप्ति के लिए न करने का मत सूत्रकार ने प्रकट किया है।⁴ यदि धर्म का आचरण लौकिक उद्देश्य से (अर्थात् यश लाभ सम्मान प्राप्ति हेतु) किया जाता है तब वह फल प्राप्ति के समय निष्फल हो जाता है।⁵ जैसे आम का वृक्ष कोई फल खाने के लिए आरोपित करता है परन्तु इससे न केवल फल ही प्राप्त होते हैं; इसके साथ-साथ सुगन्धि और छाया भी प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार धर्म का आचरण करने पर लौकिक फल भी स्वतः गौण रूप से उत्पन्न होते हैं, उन्हें फल प्राप्ति का उद्देश्य न मानकर वैसे ही ग्रहण कर लेना चाहिए।⁶

यदि धर्म का आचरण करते हुए लौकिक फल की प्राप्ति नहीं होती तो धर्म का आचरण करने से नहीं हटना चाहिए, क्योंकि इससे धर्म की हानि नहीं होती अपितु धर्म का आचरण, धर्म के लिए ही करना चाहिए।⁷ कोई भी व्यक्ति वेद शास्त्र के ज्ञान में पारङ्गत क्यों न हो, यदि आचार से भ्रष्ट है तो सम्पूर्ण धर्म ज्ञान उसे कोई लाभ नहीं पहुँचाता और न ही आनन्द देता है। जैसे नेत्रहीन व्यक्ति के हृदय में उसकी सुन्दर प्रियतमा भी कोई सौन्दर्यानुभूति उत्पन्न नहीं करती।⁸

1 आचारः परमो धर्मः, मनु स्मृ० १/१०८

2 आचारः परमो धर्म सर्वेषामिति निश्चयः

हीनाचारपरीतात्मा प्रेत्य चेह च नश्यति ।। व० ध० सू० ६/१

3 गौ० ध० सू० ३.२.१, गौ० ध० सू० भूमि०, पृ० २१

4 आ० ध० सू० १.७.२०.१

5 निष्फलाह्यभ्युदये भवन्ति । आ० ध० सू. १.७.२०. २, तै० सं० १.६८

6 तद्यथाऽऽग्ने फलार्थे इत्यादि १.७.२०.३

7 नो चेदनूत्पद्यन्ते न धर्महानिर्भवति । आ० ध० सू० १.७.२०.४

8 "आचारहीनस्य तु ब्राह्मणस्य वेदाः षडङ्गास्त्वखिलाः ।

संयज्ञाः । कां प्रीतिमुत्पादयितुं समर्था अन्धस्यदारा इव दर्शनीयाः" ।। व० ध० सू० ६/४

आचरण को मानव मात्र के आधार का तत्त्व बतलाते हुए धर्मशास्त्रकारों ने इसे धर्म का मूल स्वीकार किया है।¹ धर्म का आचरण करते हुए मनुष्य को दुष्टों, शठों, नास्तिकों तथा वेद ज्ञानहीन व्यक्तियों के वचनों से कभी दुःखी नहीं होना चाहिए, न ही उनकी बातों में आकर उनसे कोई व्यवहार करना चाहिए, उनके हर धोखे से सावधान रहना चाहिए।² धर्म और अधर्म स्वयं आकर इस प्रकार परिचय नहीं देते कि हम यहां उपस्थित है न ही देवगण, गन्धर्व और पितृगण भी इसका कोई परिचय ही देते हैं इसलिए कपट का आचरण करने वालों से दूर रहना चाहिए। 'धर्म और अधर्म का स्वरूप प्रत्यक्ष से नहीं अपितु वेद ज्ञान से ही जाना जाता है जो सदा निर्दोष माना जाता है।'³

धर्मशास्त्रकार आचार को सम्मान, दीर्घ-जीवन और सुख का कारण मानते हैं।⁴ आचार ही एक ऐसी कसौटी है जिस पर व्यक्ति की योग्यता का आकलन सम्भव है।⁵

“वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः”⁶। समस्त ज्ञान को आचरण में बदलना ही वास्तविक ज्ञान है। यद्यपि सदाचार का पालन अत्यन्त अपरिहार्य है परन्तु यह इतना कठिन है कि निरन्तर प्रयत्न करने पर भी आचरण भ्रष्टता सम्भव है। आपस्तम्बधर्मसूत्र में वर्णन है कि आर्य लोग (अर्थात् तीन उच्च वर्ण के शिष्ट लोग) जिस कार्य को उत्तम कहते हैं वह धर्म है और जिस कार्य को निन्दनीय कहते हैं वह अधर्म है।⁷

1 सं० वा० का वृ० इति० वेदाङ्ग खण्ड, पृ० 183

2 आ० ध० सू० 1.7.20.5

3 आ० ध० सू० 1.7.20.6 पा० सू० 7.2.88

4 'आचारो भूतिजनन आचारः कीर्ति वर्धनः ।'

आचाराद् वर्धते आयु आचारो हन्त्यलक्षणम् ।। गौ० ध० सू० भूमि०, पृ० 21, मनु स्मृ० 4/156

5 आ० ध० सू० प्रस्ता०, पृ० 25

6 वही ।

7 यं त्वार्याः क्रियमाणं प्रशंसन्ति स धर्मो, यं गर्हन्ते सोऽधर्मः । आ० ध० सू० 1.7.20.7

जो मनुष्य शास्त्र विहित नियमों का पालन करते हुए आचरण करता है वह लोक और परलोक दोनों ही को प्राप्त करता है।¹ इसी आचरण के अन्तर्गत कौन से कार्य करने चाहिए कौन-कौन से कार्य नहीं करने चाहिए इनका भी विधान बतलाया गया है।² जैसे ब्राह्मण के लिए वाणिज्य करना आचार विरुद्ध है परन्तु विपत्ति के समय में वह उन वस्तुओं का व्यापार कर सकता है जिनका विक्रय करने का विधान बनाया गया है। किन्तु जो वस्तुएँ विधान विहित नहीं हैं उनका व्यापार करने का विधान नहीं है।³ पतितों के साथ किसी भी प्रकार का व्यवहार न करने का उल्लेख धर्मसूत्रकार ने किया है।⁴

सुवर्ण की चोरी ब्राह्मण की हत्या, पुरुष का वध, वेदाध्ययन का त्याग, गर्भ की हत्या, माता और पिता के सम्बन्ध वाली स्त्रियों तथा उनकी पुत्रियों के साथ मैथुन, सुरापान तथा उन लोगों के साथ संयोग, जिनसे संयोग करना निन्दनीय कहा गया है, ये सभी दुराचरण कहे गये हैं।⁵

मनुष्य का यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रियां चित्त को हरण करने वाले विषय में प्रवृत्त कराती हैं उनको रोकने में प्रयत्न करें और जो इनको जीतकर धर्म पर चलता है वही अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त करता है।⁶ धर्मसूत्रकारों की मान्यता के मूल में कर्म सिद्धान्त है जिसके अनुसार किया हुआ कोई भी शुभ या अशुभ कर्म नष्ट नहीं होता, अपितु अच्छे-बुरे किसी न किसी फल को अवश्य ही उत्पन्न करता है। उन कर्मों का फल चाहे इसी जन्म में मिले अथवा अगले जन्म में परन्तु वह कर्म फल अवश्य ही मिलेगा। इसलिए वर्तमान तथा आगे आने वाला जन्म दोनों ही शुद्ध होने का यत्न धर्म शास्त्रकारों ने बताया है। महर्षि

1 एवमुभौ लोकावभिजयति । आ० ध० सू० 1.7.20.9

2 अविहिता ब्राह्मणस्य वाणिज्या । आ० ध० सू० 1.7.20.10

3 आपदि व्यवहरेत पण्यानामपण्यानि व्युदस्यन् आ० ध० सू० 1.7.20.11

4 आ० ध० सू० 1.7.21.5

5 आ० ध० सू० 1.7.21.6

6 इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु इत्यादि सत्यार्थ प्रकाश, पृ० 177

दयानन्द के अनुसार राग, द्वेष, अन्याय, मिथ्याभाषण आदि दोषों को छोड़कर निर्वैर प्रीति, परोपकार, सज्जनतादि को धारण करना उत्तम आचार है।¹

भारतीय नीति शास्त्र मनुष्य की सम्पूर्ण कमियों को ध्यान में रखकर किसी नियम को बनाता है तथा मनुष्य के आचरण में उत्कर्ष लाने की व्यवस्था करता है।² मनुष्य का पतनोन्मुख होना स्वभाविक है। इसलिए वह मानवकल्याण के लिए धर्म की व्याख्या करता है।³ मनु⁴ ने भी इसी का संकेत किया है। “न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला।।” आचरण के अभाव में मनुष्य और पशु में कोई भेद नहीं रह जाता।

आचार की पवित्रता सर्वोपरि है। आचरण के आधार पर निम्न कोटि का व्यक्ति भी ईश्वर-तत्त्व का दर्शन कर सकता है और उच्च वर्ण के व्यक्ति को शिक्षा दे सकता है।⁵ यदि आचरण हीन महर्षि भी तपस्या करता है तो वह तपस्या भी व्यर्थ हो जाती है उसे भी सामान्य व्यक्ति की तरह पाप भोग करना पड़ता है।⁶

वर्ण व्यवस्था भी आचरण के आधार पर थी जिस से वर्ण व्यवस्था में कमी आई और पद तथा कुल को आधार बनाया गया तब से वह अपनी अच्छाइयों से वियुक्त हो गई।⁷ धर्म शास्त्र की दृष्टि से आचार का इतना महत्त्व है कि आचारहीन पिता तक का परित्याग करने का आदेश दिया गया है। व्यक्ति का धर्म आचार के पीछे छिपा है। अगर वह आचार का उल्लंघन करता है तो उसे समाज में जीने का कोई अधिकार नहीं। यदि उसका पाप

1 सत्यार्थ प्रकाश, पृ० 180

2 आ० ध० सू०, प्रस्ता० पृ० 25

3 वही।

4 मनु० स्मृ० 5/56

5 आ० ध० सू० प्रस्ता०, पृ० 26

6 गौ० ध० सू० भूमि०, पृ० 22

7 आ० ध० सू० प्रस्ता०, पृ० 26

गम्भीर हो तो जीवन का अन्त कर दें।¹ आचार से च्युत व्यक्ति को समाज में सामाजिक जीवन व्यतीत करने का अधिकार नहीं है लेकिन उसके प्रायश्चित्त कर लेने पर पुनः समाज में जीने का द्वार खोल दिया गया है।²

गौतमधर्मसूत्र में कहा है कि बुरे कर्म करने वाला मनुष्य इस संसार में पाप से लिप्त हो जाता है। 'अथ खल्वयं पुरुषो याप्येन कर्मणा लिप्यते।'³ समाज में जीने और दूसरों को जीने देने का मन्त्र ही इस लोक में कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है।⁴ तप, होम और उपवास धर्म में आस्था उत्पन्न कर पुनः उत्तम आचरण की प्रेरणा देते हैं। धर्मसूत्रकार लोक की परवाह कम करके परलोक का ज्यादा प्रयोजन बतलाते हैं। यह धर्मभीरुता और ईश्वर या परलोक का भय मनुष्य के आचरण को सही दिशा की ओर निरन्तर प्रेरित करता है।⁵ अतः मानव जन्म लेकर प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्माचरण के प्रति अधिक सावधान रहना चाहिए।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में कुछ क्षण ऐसे होते हैं जब उसकी बुद्धि निर्मल और सात्त्विक रहती है तथा उन क्षणों में किए हुए कार्यकलाप शुभ कामनाओं से समन्वित एवं पुण्यवर्धन करने वाले होते हैं।

मैक्समूलर ने भी भारतीय धर्म और संस्कृति की उपलब्धियों का उल्लेख करते हुए कहा है कि 'यदि मुझ से यह पूछा जाए कि किस देश में मानव मस्तिष्क ने अपने श्रेष्ठ उपहारों का पूर्ण विकास किया है व जीवन की जटिलतम समस्याओं पर गम्भीरता से विचार किया है तो मैं भारत की ओर संकेत करूंगा। क्योंकि जिन्होंने प्लेटों तथा काण्ट के

1 त्यजेत्पिरं राजघातकं शूद्रयाजकं शूद्रार्थयाजकं वेदविप्लावकं भूणहनं यश्चन्त्यावसायिभिः सह संवसेदन्त्याव सायिन्यां वा। गौ० ध० सू० 3.2.1

2 आ० ध० सू०, 1.9.24.20

3 गौ० ध० सू०, 3.1.2

4 आ० ध० सू० प्रस्ता, पृ० 26

5 बौ० ध० सू० प्रस्ता०, पृ० 22

दर्शन का अध्ययन कर के जटिल समस्याओं के हल ढूँढ निकाले हैं।¹ हमारे सांस्कृतिक इतिहास के उत्थान और पतन का यही कारण है।² सत्य भाषण के साथ-साथ शुभ वचन एवं दूसरों को कष्ट न देने वाले वचन बोलना आचार का एक अनिवार्य अंग हैं। वाणी का संयम आवश्यक है 'वाक् चक्षु कर्म संयता'³ जीवन के अन्तिम क्षणों में भी मनुष्य उत्तम कर्मों का आचरण कर दुष्कर्मों के बुरे परिणामों से बच सकता है। डॉ० राधा कृष्णन्⁴ ने कर्म के सिद्धान्त पर कहा है कि मनुष्य अगर पतित भी हो जाए तो उसे निराश नहीं होना चाहिए बल्कि कर्म सुधार करना चाहिए।

वेद के अक्षरों का ज्ञान प्राप्त कर लेना ही धर्म नहीं कहलाता अपितु उसके द्वारा बताए गए कर्मों का आचरण करके धर्म का पालन करना ही धर्म कहलाता है जिसका पालन सरलता से किया जा सकता है।⁵ अपने धर्म का निरन्तर पालन करने पर निम्न वर्ण के व्यक्ति अर्थात् शूद्र आदि आगे उत्तरोत्तर जन्म होने पर पूर्व वर्ण की अपेक्षा उच्च वर्ण में जन्म पाते हैं।⁶ इस प्रकार उनकी जाति का परिवर्तन होता है। अधर्म का आचरण करने से श्रेष्ठ वर्ण के व्यक्ति आगे उत्तरोत्तर जन्म होने से हीन वर्ण में उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार उनकी जाति का परिवर्तन होता है।⁷ अतः वेद विहित आचरण ही सर्वश्रेष्ठ है, उसी से धर्म प्राप्ति होती है।

1 If I were asked under what sky the human mind has fully developed some of its choicest gifts has most deeply pondered on the greatest problems of life and has found solutions of some of them which well deserve the attention even of those who have studied Plato and Kant - I should point of India." What Can India Teach Us, p. 6.

2 बौ० ध० सू० १९

3 गौ० ध० सू० १. १. ३

4 द हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ, डॉ० राधा कृष्णन्, पृ० 76

5 कृच्छ्रा धर्म समाप्तिरसमाम्नानेन लक्षणकर्मणा तु समाप्यते । आ० ध० सू० 2.11.29.13

6 आ० ध० सू० 2.5.11.10

7 आ० ध० सू० 2.5.11.11

यज्ञ एवं उसका स्वरूप

यज्ञ वैदिक धर्म का मेरुदण्ड है। यज्ञ शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में हुआ है।¹ यज्ञ शब्द की व्युत्पत्ति $\sqrt{\text{यज्}}$ धातु से मानी जाती है। अष्टाध्यायी में इस धातु को देव पूजा,सङ्गतिकरण और दान के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। इस धातु में नङ् प्रत्यय करने पर यह शब्द बनता है।² अथ यज्ञ का अर्थ स्पष्ट हो जाता है कि इसमें देवताओं की पूजा की जाती है – देव तुल्य ऋषियों का संगतिकरण एवं दान आदि किया जाता है।

यज्ञ का निवर्चन निरुक्त कार ने इस प्रकार किया है। यज्ञ कस्मात् प्रख्यातं यजति कर्म इति निरुक्ताः। याच्यो भवतीति इति वा, बहु-कृष्णाजिन इति औपमन्यवः। यजूंषेनं नयन्तीति वा।³ अर्थात् ऐसा कर्म जो प्रसिद्ध है। पूरा होने पर यह यज्ञ है, निरुक्तकारों का यह कथन है। दूसरे इसमें याचना की जाती है अतः यह यज्ञ है। औपमन्यव का मत है कि 'बहु-कृष्णाजिन' अर्थात् बहुत से कृष्णाजिन बिछाये जाते हैं या वहाँ बहुत कृष्णाजिन होते हैं।⁴ अतः उसे यज्ञ कहते हैं। या एनम् इस यज्ञ को 'यजूंषि नयन्ति'⁵ यजुर्मन्त्र इसे सफलता प्राप्त करवाते हैं। यज्ञ शब्द का तात्पर्य है " इज्यते असौ, अनेन यत्र वा"⁶ अर्थात् जो यजन किया जाए जिसके द्वारा यजन अथवा जहाँ यजन हो वही यज्ञ है।⁷ यज्ञ को ही विष्णु कहा

1 अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं होतारं^{रून}धातमम्। ऋग्वेद 1.1.1.

2 'यजयाचयतविच्छ प्रच्छरक्षोनङ्' अष्टाध्यायी 3.3.90

3 निरुक्त 3.4.2 अथवा 3.19

4 याञ्चो भवतीति वा, बहुकृष्णाजिन इत्यौपमन्यवः। निरुक्त 3/4, ऐतरेय ब्रा0 1/1/3.

वै0 साहि0 वा0 बलदेव उपा0, पृ0 44।

5 यजूंषेनं नयन्तीति वा। निरुक्त 3/4

6 अमर कोष 2/7/13

7 कृष्ण यजुर्वेद एक अध्ययन, पृ0 24

गया है।¹ यज्ञ से सम्पूर्ण चराचर की उत्पत्ति हुई है।² यज्ञ संसार में ऐश्वर्य रूप है।³ यज्ञ को स्वयं प्रजापति माना गया है।⁴ यज्ञ सम्पूर्ण पापों व रोग आदि का नाशक है।⁵

देवताओं को उद्देश्य बनाकर द्रव्य का त्याग 'मन्त्रोच्चारण' पूर्वक करना ही इसका मुख्य अर्थ है।⁶ स्पष्ट है कि यज्ञ एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें वैदिक मन्त्रों का पाठ करते हुए अनेक क्रियाएं सम्पन्न की जाती हैं। पुराण साहित्य में इसका विशद वर्णन है। पुराण साहित्य में यज्ञ को देवता, कर्मविशेष में हवनीय द्रव्य, वैदिक मन्त्र, ऋत्विक् और दक्षिण का संयोग माना है।⁷

याज्ञिक प्रक्रिया का ज्ञान और देवत्व का ज्ञान क्रमानुसार फूल और फल है।⁸ शतपथ ब्राह्मण में पाँच अङ्गों वाले यज्ञ को माना गया है।⁹ यज्ञ देवों की आत्मा है।¹⁰ तैत्तिरीय संहिता में यज्ञ को विश्व की नाभि कहा गया है।¹¹

तैत्तिरीय संहिता के एक मन्त्र की व्याख्या में आए 'यज्ञो वै विष्णुः' पर भाष्य में "यज्ञस्य व्याप्त्या विष्णुत्वम्" यज्ञ के फल से व्याप्त होने के कारण विष्णु है यह सायणाचार्य

1 "यज्ञो वै विष्णुः" कवि० क० सं० 37/4, 41/1, तै० ब्रा० 3/2/3

2 तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत . . . यजुस्तस्मादजायत् । ऋग्वेद 10/90/8-9

3 'यज्ञो वै वसुः' शत० ब्रा० 1/7/4/14

4 'यज्ञो वै प्रजापतिः' का० स० 19/8

5 यज्ञ शिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।

भुञ्जन्ते ते त्वद्यं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् । श्री भगव० गी० 3/13

6 होमो दैवो बलिर्भोता इत्यादि सिद्धान्त कौमुदी दाधिमथीटीका पाद टिप्पणी, पृ० 314, वाचस्पत्यम्, पृ० 4769

7 'हस्ताश्वरथयानानि भूमिवस्त्रयुगानि च अनुडुपगोशत

दद्यादृत्विजां चैव दक्षिणाम्' ।। म० पु० 105/15

8 यज्ञ दैवते पुष्पफले देवता ध्यात्से वा । निरुक्त 1/20

9 शत० ब्रा० 3/1/4/20

10 शत० ब्रा० 3/1/4/20, 9/3/2/7

11 'यज्ञमार्हुभुवनस्य नाभिम्' तै० सं० 7/4/18/4

का वचन है।¹ तैत्तिरीय ब्राह्मण² में इसे प्रजापति भी कहा है। श्रीमद्भगवद् गीता³ में यज्ञ के विषय में उल्लेख है कि प्रजापति ने कल्प के आदि में यज्ञ सहित प्रजा की रचना की। गृहस्थाश्रम की प्रशंसा में प्रजापति के दूसरे वचन का उल्लेख करते हुए कहा है कि श्रद्धा, तप, यज्ञ तथा दान करने वाला मेरे साथ निवास करता है।⁴

भगवान् को यज्ञ स्वरूप कहकर उसे यज्ञेश्वर यज्ञ पुरुष आदि नामों से व्यक्त किया गया है। अनेक ऋषियों ने यज्ञ का अर्थ परोपकार किया है।⁵ यज्ञ द्वारा ही दैत्य, असुरादि पर विजय प्राप्त होती है, दिव्यता और वर्चस्व इसी से मिलता है।⁶ मैकडानल ने यज्ञ शब्द का अर्थ पूजा, प्रशंसा और बलिदान किया है।⁷ यज्ञ से ही देवताओं का पोषण होता है तथा देवता यज्ञ से ही कामनाओं की पूर्ति करते हैं।⁸

वेद वाणी भी सृष्टि के आरम्भ में यज्ञ रूप परमात्मा के द्वारा ऋषियों में प्रवृष्टि हुई अर्थात् सर्ग के आदि में यज्ञ द्वारा ही वेद वाणी उत्पन्न हुई।⁹ यज्ञ देवताओं का निवास है।¹⁰ उत्तम सन्तान पशु आत्मज्ञान तथा अन्न की प्राप्ति यज्ञ द्वारा ही सम्भव है।¹¹ यह वृष्टि करने

1 तैत्तिरीय संहिता सायण भाष्य : 1/7/4/4

2 प्रजापतिर्वा एष वितायते यद्यज्ञः । तै0 ब्रा0 1/4/16/33

3 श्री मद्भगवद्गीता 3/10

4 त्रयी विद्यां ब्रह्मचर्यं प्रजापतिं श्रद्धा तपो यज्ञमनुप्रदानम्

य एतानि कुर्वते तैरित्सह स्मो भूत्वा ध्वंसतेऽन्यत्प्रशंसन्ति । आ0 ध0 सू0 2 : 9 : 24 : 8 : प्र : पृ0 44

5 ऋक् सूक्त संग्रह भूमि0, पृ0 49

6 तै0 स0 6/3/4/7

7 संस्कृत अंग्रेजी डिक्श, पृ0 238

8 पद्म पु0 सू0 ख0 3/32, वि0 पु0 1/1/8

9 "यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्

तामन्वविदन्तृषिषुप्रविष्टाम् ।।" ऋग्वेद 10.71.3

10 'एतत् खलुः^१ देवानामपराजितमायतनम् यद्यज्ञः' तै0 ब्रा0 3/3/7/7

11 आश्व0 गृ0 सू0 1/10/22

वाला भी है।¹ जो यज्ञार्थ कर्म से विमुख होता है उसके लिए विश्व में कोई स्थान नहीं शान्ति पर्व का कथन है कि यज्ञ के पीछे जगत है और जगत के पीछे यज्ञ है।²

यज्ञ का प्रधान फल स्वर्ग की प्राप्ति है।³ अतः यह स्पष्ट ही है कि यज्ञ ही से सभी वस्तुओं की प्राप्ति व मानव मात्र का कल्याण होता है।

यज्ञ के प्रकार

ऋग्वेद⁴ में वर्णन है कि परमात्मा ने जिसकी सात परिधियों थी इस तिगुने किए हुए अर्थात् इक्कीस की संस्था वाले यज्ञ को देखा। ऐतरेय ब्राह्मण में वैदिक कर्म पाँच भागों में विभक्त है। अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चार्तुमास्य, पशु तथा सोम। परन्तु कल्प ग्रन्थों में श्रौत और स्मार्त कर्मों की मिली-जुली संख्या इक्कीस मानी है।⁵ वैदिक कर्म के तीन प्रकार हैं अर्थात् इनकी तीन संस्थायें हैं—

श्रौत संस्था, सोम संस्था एवं पाक संस्था।⁶

प्रथम श्रौत संस्था में अग्नि होत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रायण, चार्तुमास्य निरुद्ध पशुबन्ध, सौत्रामणि और पिण्ड पितृ यज्ञ है। इस संस्था का अपर नाम हर्वियाग संस्था भी है।

सोम-संस्था के सात यज्ञ इस प्रकार हैं— अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोयाम। इसी प्रकार पाक-संस्था में औपासन, होम,

1 अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।

यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञ कर्म समुद्भवः।। गीता 3/14

2 महा.श्रु. 267/34

3 वै० सा० संस्कृति, पृ० 52-।

4(क) 'सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्तसमिधः कृताः' ऋग्वेद 10/91/15

(ख) स एवं त्रिवृत्तं सप्ततन्तुमेक विंशति संख्यामपश्यत्।' गौ० ब्रा० 1/12, 5/25

5 वै० सा० और सं०, पृ० 512

6 गौ० ध० सू० 4.8.19-21

वैश्वदेव, पार्वण, अष्टका, मासिक श्राद्ध, श्रवणा तथा शूलगव सात यज्ञ हैं।¹ श्रौत यज्ञों का वर्णन आपस्तम्बधर्मसूत्र में नहीं मिलता। आपस्तम्बधर्मसूत्र में केवल पञ्चमहायज्ञों का विधान प्राप्त होता है। अतएव इस अध्याय में श्रौत यज्ञों का वर्णन नहीं किया गया है। इस अध्याय में पञ्चमहायज्ञों का ही वर्णन प्रस्तुत किया जायेगा। आपस्तम्ब के अनुसार जिन यज्ञों का यहां वर्णन किया जा रहा है। उन्हें स्तुति के लिए महायज्ञ या महासत्र कहते हैं।² शतपथ ब्राह्मण में भी पञ्चमहायज्ञों को महासत्र कहा है।³

इन महायज्ञों के अन्तर्गत प्रतिदिन प्राणियों के लिए बलि अर्पित करना तथा मनुष्यों को यथाशक्ति दान देना सम्मिलित है।⁴ ये यज्ञ निम्नलिखित हैं—

ब्रह्म-यज्ञः, देव-यज्ञः, भूत-यज्ञः, मनुष्य-यज्ञ, पितृ-यज्ञः। धार्मिक धारणा के अनुसार यज्ञ-याग करने से सभी प्रकार की आपत्तियां दूर होती हैं तथा इष्ट कामनाएं पूर्ण होती हैं इन यज्ञों का सम्बन्ध यजुर्वेद से है, आपस्तम्ब ने भी इन्हें स्वीकार किया है।⁵

1. ब्रह्म यज्ञ : प्रतिदिन जो पाप हो जाते हैं उन पापों (चूल्हा, चक्की, बुहारी, ऊखल, जल के स्थान जन्य पाप से मुक्त होने के लिए ब्रह्म यज्ञ का विधान है। वेद वेदाङ्गादि तथा पुराणादि आर्षग्रन्थों का स्वाध्याय करना ही ब्रह्मयज्ञ कहलाता है। शिष्टाचार को भी ब्रह्म यज्ञ की संज्ञा दी गयी है।⁶

1 वै० सा० और सं०, पृ० 512

2 'तेषां महायज्ञा महासत्राणीति च संस्तुति' आ० ध० सू० 1.4.12. 14, बौ० ध० सू० 2.6.11.1, मा० श० ब्रा० 11.5.6.1, सत्यार्थ प्रकाश पृ० 65, मनु स्मृ० 4/21

3 शत० ब्रा० 11.5.6.1

4 (क) अहरर्हभूत बलिर्मनुष्येभ्य यथा शक्ति दानम् ।। आ० ध० सू० 1.4.12.15

(ख) गौ० ध० सू० 1.5.3. अथर्व० 19/55/7

5 आ० गृ० सू० (तात्पर्य दर्शन सहित), पृ० 104

6 आ० ध० सू० 1.4.12.1 शिष्टाचारोऽपि ब्रह्मयज्ञः इति आ० ध० सू० पाद० टिप्पणी, पृ० 97, गौ० ध० सू० 2.6.11.6, गौ० ध० सू० 1.5.4, वेदार्थ प्रकाश, पृ० 145

2. **देव यज्ञ** : देवों के लिए स्वाहा शब्द के साथ काष्ठ की आहुति देने का विधान अर्थात् प्रतिदिन के पापों से मुक्ति के लिए देवयज्ञ में अन्न भी हो तो काष्ठ तक की आहुति दी जाती है। किसी भी भँति वैश्वदेव कर्म करना चाहिए।¹ कुछ आचार्यों के मत से अन्न का अभाव होने पर वैश्व देव कर्म नहीं करना चाहिए।²

3. **पितृ यज्ञ** : प्रतिदिन जो पितरों के लिए तर्पण किया जाता है वह पितृ यज्ञ कहलाता है। इसमें जन्म से तर्पण तक के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं तथा इस यज्ञ में पितरों को तिल मिश्रित जल की तीन-तीन अञ्जलियां 'स्वधा' शब्द के साथ अर्पित की जाती है।³

4. **भूत यज्ञ** : जिस यज्ञ में प्रतिदिन सात प्रकार के भूतों(प्राणियों)के लिए बलि अर्पित की जाती है तथा मनुष्यों को यथा शक्ति अन्नादि का दान किया जाता है उसे भूत यज्ञ कहते हैं।⁴ इसमें वैश्वदेव बलि तथा पंच बलि होती है।⁵ वैश्वदेव बलि में तीन उच्च वर्णों के आर्यजन गृहस्थ के लिए अन्न पकावे उसे तैयार कर के गृहस्थ तथा उसकी पत्नी को अर्पित करें।⁶ (इसमें गृहस्थ स्वयं अन्न न पकावे न ही स्त्रियां यह कार्य करे।) भोजन बनाने वाले का मुख जब तक अन्न की ओर हो वह तब तक न बोले न खांसे।⁷

5. **मनुष्य यज्ञ** : अतिथि-सत्कार कर्म करना मनुष्य यज्ञ है। इसमें अन्न पान आदि भी यदि न हो तो जल, आसन, शयन, ठहरने आदि का स्थान देना चाहिए।⁸ मनुष्य को

1 आकाष्ठादिति वचनादशनीयाभावेन भोजन लोपेऽपि यथा कथञ्चित् वैश्वदेवं कर्त्तव्यं

पुरुषसंस्कारत्वादिति। आ० ध० सू० 1.4.13.1 सू० पर हरदत्त व्या०, पृ० 96

2 आ० ध० सू० 1.4.13.1 सूत्र से व्याख्या टिप्पणी, बौ० ध० सू० 2.6.11.2

3 आ० ध० सू० 1.4.13.1, गौ० ध० सू० 1.5.5-8, बौ० ध० सू० 2.6.11.3

4 आ० ध० सू० 1.4.12.15, बौ० ध० सू० 2.6.11.4

5 नित्यकर्म पूजा प्रकाश, पृ० 150

6 आर्या प्रयताः वैश्वदेवेऽन्नसंस्कारतारः स्युः। आ० ध० सू० 1.2.3.1

7 भाषां कासं क्षवधुमित्यभिमुखोऽन्नं वर्जयेत्। आ० ध० सू० 1.2.3.2

8 आ० ध० सू० 1.4.13.1

यथाशक्ति दान देने का भी विधान है।¹ यज्ञ में अनुज्ञा वाक्यों के आरम्भ में 'ओम्' शब्द का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि ओम् स्वर्ग का द्वार है।² लौकिक कार्य में भी पुण्यकर्मों के करने से पहले ओम् का प्रयोग करें। यथा 'ऊँ' पुण्याहम्'।

होम

आपस्तम्बधर्मसूत्र में होम के विषय में स्पष्टतया वही विधान का उल्लेख मिलता है जो बलि कर्म के लिए भी विहित है। आपस्तम्बधर्मसूत्र में होम के विषय में हवनीय पदार्थ का जो वर्णन है उसमें गृहस्थ द्वारा निर्मित अन्न का ही होम विहित है। होम तथा बलि कर्म स्वर्ग का सुख प्रदान करते हैं।³ हवनार्थ जो अन्न पकाया जाता है उसे पकाने का विशेष नियम है। उस अन्न को आर्यजनों के निरीक्षण में पकाने का विधान है। शूद्र के द्वारा भी आर्यजन की देख-रेख में अन्न पकाने का नियम है।⁴ हवनीय जो अन्न पकाया जाता है। उसको पकाते समय पवित्रता का विशेष नियम बनाया गया है जैसे बालों को छूना, शरीर के किसी अंग को छूना, वस्त्र को छूना आदि वर्जित है यदि कहीं छू लिया तो जल का स्पर्श करने का विधान कहा गया है।⁵

शूद्रों को अपने शरीर के केश, नाखून दाड़ी प्रतिदिन काटने का विधान है।⁶ उन्हें अपने वस्त्रों को पहने हुए ही स्नान करना चाहिए। अथवा प्रत्येक पक्ष की अष्टमी तिथि को या पर्वों (अमावस्या और पौर्णमासी) को केश, श्मश्रु, बालों तथा नाखूनों को कटवाये तब वे

1 आ० ध० सू० 1.4.12.15, बौ० ध० सू० 2.6.11.5

2 आ० ध० सू० 1.4.13.8,9

3 होमा बलयश्च स्वर्ग पुष्टिसंयुक्ताः । आ० ध० सू० 2.2.3.12

4 आर्याधिष्ठिता वा शूद्रास्संस्कर्तारः स्युः । । आ० ध० सू० 2.2.3.4

5 केशानङ्गं वा सश्चाऽऽलभ्याऽपउपस्पृशेत् । आ० ध० सू० 2.2.3.3

6 अधिकमहरहः केशश्मश्रुलोमनखवापनम् । आ० ध० सू० 2.2.3.6

आर्यजनों के निरीक्षण में हवनीय व बलिकर्म भोजन बना सकते हैं ऐसा विधान कहा है।¹ जो अन्न गृहस्थ के लिए पकाया जाता है उसी के हवन का उल्लेख आपस्तम्बधर्मसूत्र में मिलता है।²

होम का निमित्त

होम देवताओं द्वारा अपेक्षित, न था अपितु शान्ति निमित्त या पापों के निमित्त या सुख-समृद्धि हेतु एक प्रकार की भेंट थी जिससे देवता या व्यक्ति प्रसन्न होता था। होम से प्रसन्न होकर देवता या ईश्वर व्यक्ति को उसके अपराधों के लिए क्षमा करता था। होम के द्वारा व्यक्ति अपने दुष्कृत्यों द्वारा खोयी हुई भगवत्कृपा को पुनः प्राप्त कर लेता था। अतः होम का परिणाम प्रायश्चित्त विषयक एवं शुद्धिकरण से सम्बन्धित था अर्थात् होम करने से पापी शुद्ध हो जाता था और अपने पाप का उपशमन भी कर लेता था।³

आपस्तम्बधर्मसूत्र में उल्लेख है कि जिस अन्न को अतिथि को नहीं दिया जाता या पहले अग्नि में हवन नहीं किया जाता वह अन्न तब तक नहीं खाना चाहिए।⁴

होम के पदार्थ

आपस्तम्बधर्मसूत्र में हवन विषय में यही वर्णन मिलता है कि जो अन्न वैश्वदेव कर्म व गृहस्थ के लिए बनाया जाता है उसी का हवन करना चाहिए व जिस अन्न को अतिथि को दिया जाता है वह भी हवन ही होता है। अतिथि के उदर में रहने वाली जाठराग्नि आह्वनीय अग्निवत् ही होती है।⁵ इसमें पकाया गया अन्न, दूध, जल, घृत आदि का उल्लेख मिलता है।

1 आ० ध० सू० 2.2.3.7,8,9

2 आ० ध० सू० 2.2.3.12

3 तै० आ० 2/7/8

4 आ० ध० सू० 2.6.15.13

5 आ० ध० सू० 2.2.3.12., 2.3.7.2, 2.3.7.4

हवन में निषिद्ध पदार्थ एवं व्यक्ति

नमकीन पदार्थ या नमक से युक्त अन्न का अग्नि में हवन करना निषिद्ध कहा है।¹ बिगड़े हुए अन्न (कुलुत्थ, कोदौ आदि) के साथ मिश्रित अन्न का हवन नहीं करना चाहिए।² यदि बिगड़े हुए अन्न का या मिश्रित अन्न का हवन करना ही पड़े तो अग्नि के उत्तर भाग से गरम भस्म लेकर उसी भस्म में अन्न का होम करे इस प्रकार का हवन अग्नि में हवन नहीं होता यह विधान आपस्तम्ब ने बतलाया है।³ स्त्री विषय में कहा गया है कि वह अन्न का हवन अग्नि में न करें।⁴

जिस बालक का उपनयन संस्कार नहीं हुआ है वह भी अग्नि में हवन न करें।⁵ इस विषय में स्पष्ट कहा है कि जब तक अन्न प्राशन नहीं होता तब तक बालक अपवित्र नहीं होते। अन्न-प्राशन होने पर यज्ञोपवीती ही हवन कर सकता है।⁶ होम करते समय यज्ञोपवीत को धारण करने का नियम भी बताया गया है।⁷ याज्ञवल्क्य के अनुसार यदि कोई द्विज अपने को पाप मुक्त करना चाहता है तो उसे गायत्री मन्त्र द्वारा तिल से होम करना चाहिए।⁸ मनु⁹ एवं वसिष्ठ के मत से ब्राह्मण व्यक्ति वैदिक मन्त्रों के जप एवं होम से सभी प्रकार की विपत्तियों से छुटकारा पा जाता है। आपस्तम्बधर्मसूत्र में इतना ही उल्लेख होम के सन्दर्भ में उपलब्ध होता है।

1 आ० ध० सू० 2.2.3.14

2 आ० ध० सू० 2.2.3.15

3 आ० ध० सू० 2.2.3.16

4 आ० ध० सू० 2.2.3.17

5 आ० ध० सू० 2.2.3.18

6 आ० ध० सू० 2.2.3.19, 2.2.3.23, 24

7 आ० ध० सू० 1.5.15.1

8 याज्ञ० स्मृति० 3/309, मनु स्मृ० 11/34

9 व० ध० सू० 26/16

बलि कर्म

भोजन के लिए जो हविष्यान्न घर में पकाया जाता है उसी से बलि वैश्वदेव कर्म सम्पन्न किया जाता है, अर्थात् गृहस्थ को खिलाने से पूर्व पकाया गया अन्न होम या बलि के रूप में अर्पित करना बलिकर्म कहलाता है। इस पकाये गये अन्न से जो होम और बलि कर्म किया जाता है उससे स्वर्ग का सुख तथा समृद्धि प्राप्त होती है।¹

आपस्तम्बधर्मसूत्र में अन्न को बड़ी पवित्रता से तैयार करने का विधान है। आपस्तम्बधर्मसूत्र में कहा गया है कि तीन उच्च वर्ण के आर्यजन गृहस्थ को खिलाने के लिए अन्न पकावें।² यदि आर्यजन की अनुपस्थिति में शूद्रों ने अन्न तैयार किया हो तो गृहस्थ द्वारा स्वयं उस अन्न को अग्नि पर रख कर शुद्ध किया जाये ऐसा तभी करें यदि आर्यजन की बिना देख-रेख के परोक्ष में अन्न तैयार किया गया हो।³ उस पकाये हुए अन्न पर जल छिड़क कर अन्न को देवताओं को अर्पित करने योग्य बनाने का विधान किया गया है।⁴ बलि-वैश्वदेव के लिए अन्न का वर्णन गौतम, मनु बौधायन आदि धर्म शास्त्रकारों ने भी किया है।⁵ सत्यार्थ प्रकाश में भी पकाये गये अन्न से बलि वैश्वदेव करने का वर्णन आया है।⁶

जब अन्न अग्नि पर पक कर तैयार हो जाए तो पकाने वाला गृहस्थ के सामने उपस्थित होकर कहे कि अन्न पक गया 'भूतम्'।⁷ तब गृहस्थ उत्तर दे 'वह सम्यक् बनाया गया भोजन विराज का साधन है, वह मुझे क्षीण न करे।'⁸ जो अन्न गृहस्थ तथा उसकी

1 आ० ध० सू० 2.2.3.12

2 आ० ध० सू० 2.2.3.1

3 आ० ध० सू० 2.2.3.9

4 आ० ध० सू० 2.2.3.9

5 गौ० ध० सू० 1.5.9, मनुस्मृ० 3/84, बौ० ध० सू० 2.6.11.4

6 सत्यार्थ प्रकाश पृ० 65,67

7 आ० ध० सू० 2.2.3.10

8 आ० ध० सू० 2.2.3.11

पत्नी को खाना होता है उसका होम तथा 'बलि कर्म' करने का आपस्तम्बधर्मसूत्र में मन्त्रोच्चारण पूर्वक करने का विधान है। इनमें प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों को सीखते समय गृहस्थ 12 दिन तक भूमि पर शयन करे।¹

इन वैदिक मन्त्रों को सीखते समय गृहस्थ मैथुन न करे न ही मसालेदार व नमकीन भोजन करे।² इन बलियों को देते समय अन्तिम मन्त्र का उच्चारण करने पर एक दिन तथा एक रात्रि का उपवास करने का विधान है।³ जब यह बलियाँ अर्पित की जाती हैं तो ऐसा विधान है कि प्रत्येक बलि के लिए अलग-अलग स्थान को हाथ से साफ कर, हाथ को नीचे करके जल छिड़कें तब बलियों को अर्पित करें तथा उसके पश्चात् भी उसके चारों ओर जल छिड़कने का उल्लेख है।⁴ गृहस्थ इन बलियों को अपने हाथ से विधिवत् करे।

बलि के प्रकार एवं विधान

ये बलियाँ निम्नलिखित प्रकार की हैं तथा इनको करने की विधि भी भिन्न-भिन्न है—

1. वैश्वदेव बलि

सर्वप्रथम वैश्वदेव बलि को रसोई की अग्नि में अथवा पवित्र गृह्य-अग्नि में अर्पित करें। बलि अर्पित करते समय प्रत्येक बार नारायणीय उपनिषद् के मन्त्रों द्वारा अपने हाथ से छः आहुतियाँ अर्पित की जाती है।

1 आ० ध० सू० 2.2.3.12,13

2 आ० ध० सू० 2.2.3.13

3 उत्तमस्यैकरात्रमुपवासः। आ० ध० सू० 2.2.3.14

मन्त्र 'ये भूता प्रचरन्ति दिवा नक्तं बलिमिच्छन्तोवितुदस्यप्रेष्याः। तेभ्यो बलिं पुष्टिकामो हरामि मयि पुष्टिं पुष्टिपतिः दधातुः। तै० उ० 10.67

4 आ० ध० सू० 2.2.3.15

1. अग्नये स्वाहा, 2. सोमाय स्वाहा, 3. विश्वेभ्यो देवेभ्यो स्वाहा, 4. धुवाय भौमाय स्वाहा, 5. ध्रुवक्षितये स्वाहा, 6. अच्युतक्षितये स्वाहा, ये आहुतियाँ हाथ से ही प्रदान की जाती हैं। इसमें दर्वी का प्रयोग नहीं करते।¹ बलि को अर्पित करते समय पूर्वोक्त रीति से जल पहले और बाद में छिड़कने का विधान है। अथवा अलग-अलग अर्पित की जाने वाली बलियों को एक साथ एक ही स्थान पर अर्पित करने पर केवल एक ही बार अन्त में जल का परिषेचन किया जाये।² इसके बाद अग्नि के पीछे (अर्थात् पूर्व में क्योंकि पश्चिम में यजमान पूर्वभिमुख बैठा होता है)। सातवें और आठवें मन्त्र से दो बलियाँ भूमि पर रखने का विधान है आठवीं बलि को रखते समय उसे सातवीं बलि के उत्तर में रखें। सातवीं बलि में 'धर्माय स्वाहा' और आठवीं में 'अधर्माय स्वाहा' कहने का विधान है।³

इन बलि के हव्य पदार्थ के लिए जब हव्य रस तैयार हो जाए तो उसे भी बलि में प्रदान करने का विधान है।⁴ नवीं बलि रखते समय "अदभ्यः स्वाहा" मन्त्रोच्चारण किया जाता है तथा यह बलि वहाँ रखी जाती है जहाँ गृह-कार्य के लिए जल रखा जाता है।⁵

'दसवें तथा ग्यारहवें मन्त्रों से घर के मध्य में दो बलियाँ अर्पित करने का विधान है। इनमें दसवीं बलि से पूर्व में ग्यारहवीं बलि रखी जाती है दसवीं बलि रखते समय "ओषधिवनस्पतिभ्यः स्वाहा" ग्यारहवीं बलि अर्पित करते समय 'रक्षोदेवजनेभ्यः स्वाहा'। मन्त्रों का उच्चारण करने का उल्लेख है।⁶ इसके बाद चार बलियाँ जो घर के उत्तर पूर्व में रखी जाती हैं, उनको रखने का क्रम-विधान प्रत्येक बलि से पूर्व में है। जैसे तेरहवीं बलि अपने से पूर्ववर्ती बारहवीं बलि के पूर्व में रखी जाती है।

1 आ० ध० सू० 2.2.3.16

2 आ० ध० सू० 2.2.3.17, आ० गृ० सू० 2.3

3 आ० ध० सू० 2.2.3.20

4 आ० ध० सू० 2.2.3.19, बौ० गृ० सू० 1.8.1

5 आ० ध० सू० 2.2.3.21, आ० गृ० सू० 17.9

6 मध्येऽगारस्य दशमैकादशाभ्यां प्रागपवर्गम्। आ० ध० सू० 2.2.3.22

बारहवीं बलि को रखने का मन्त्र 'गृहाभ्यः स्वाहा' उच्चारण किया जाता है। तेरहवीं बलि प्रदान करते समय 'अवसानेभ्यः स्वाहा' का उच्चारण किया जाता है चौहदवीं बलि जो तेहरवीं से पूर्व में रखी जाती है को अर्पित करते समय 'अवसानपतिभ्यः स्वाहा' मन्त्र उच्चारण करने का विधान है। पन्द्रहवीं बलि अर्पित करते समय चौहदवीं से पूर्व में रखते हुए 'सर्वभूतेभ्यः स्वाहा' का उच्चारण किया जाता है।¹

सोलहवीं बलि शय्या के निकट "कामाय स्वाहा"² मन्त्रोच्चारण के साथ अर्पित की जाती है। सत्रहवीं बलि "अन्तरिक्षाय स्वाहा"³ मन्त्रोच्चारण के साथ देहली के ऊपर अर्पित की जाती है। अठारहवीं बलि द्वार के किवाड़ के पास "यदेजति जगति यच्च चेष्टति नाम्नो भागोयन्नाम्ने स्वाहा"⁴ मन्त्रोच्चारण के साथ प्रदान की जाती है।

उसके बाद दस बलियां घर के ब्रह्मसदन (अर्थात् जहां गृह्य कर्मों के समय ब्रह्मा बैठता है। यह पवित्र अग्नि के दक्षिण की ओर) नामक स्थान पर अर्पित करने का विधान है। जिनमें प्रत्येक बलि अपने से पूर्व वाली बलि के पूर्व में रखी जाने का विधान है।⁵

ये बलियाँ मन्त्रोच्चारणपूर्वक⁶ निम्नलिखित मन्त्रोच्चारण के साथ अर्पित की जाती हैं—

19. पृथिव्यै स्वाहा' |

20. 'अन्तरिक्षाय स्वाहा' |

21. 'दिवे स्वाहा' |

22. 'सूर्यायस्वाहा' \

1 आ० ध० सू० 'उत्तर पूर्व देशेऽगारस्ययोत्तरैश्चतुर्भिः । आ० ध० सू० 2.2.3.23

2 'शय्यादेशे कामलिङ्गेन ।' आ० ध० सू० 2.2.4.1

3 'देहिल्यामन्तरिक्षलिङ्गेन' आ० ध० सू० 2.2.4.2

4 'उत्तरेणाऽपिधान्याम्' आ० ध० सू० 2.2.4.3

5 'उत्तरैर्ब्रह्मसदने' आ० ध० सू० 2.2.4.4

6 आ० ध० सू० 2.2.4.4

23. 'चन्द्रमसे स्वाहा' ।
24. 'नक्षत्रेभ्यः स्वाहा' ।
25. 'इन्द्राय स्वाहा' ।
26. 'वृहस्पतये स्वाहा' ।
27. 'प्रजापतये स्वाहा' ।
28. 'ब्रह्मणे स्वाहा' ।

इन बलियों को रखने के बाद दक्षिण की ओर 29वीं बलि 'स्वधा पितृभ्यः'¹ मन्त्र का उच्चारण करके प्राचीनवीती होकर (यज्ञोपवीत को दाहिने कन्धे के ऊपर से तथा बाँये कक्ष के नीचे से धारण करके) तथा दाहिनी हथेली को उत्तान करके तीसवीं बलि पितृ बलि दें।

तत्पश्चात् पितृ बलि के उत्तर में तीसवीं बलि रुद्र के लिए उसी विधि से अर्पित की जाती है जैसे दूसरे देवों के लिए बलि अर्पित की गयी है। इसके मन्त्र निम्नलिखित हैं—

'नमो रुद्राय पशुपतये स्वाहा'²

इस तीसवीं बलि को अर्पित करते समय प्राचीनवीती न हो और न ही दाहिने हाथ की हथेली को उत्तान करे।

इन दोनों बलियों 29, 30 वीं के लिए आरम्भ तथ अन्त में परिषेचन का कर्म अलग-अलग है। यदि ये बलियाँ एक साथ भी की जाती हैं तो इनके परिषेचन का नियम अलग-अलग है।³

उसके बाद रात्रि को अन्तिम मन्त्र का पाठ करते हुए आकाश में भूतों के लिए 31वीं बलि उक्लिप्त करें ओर यह निम्न मन्त्र उच्चारित करे "ये भूताः प्रचरन्ति नक्तं बलिमिच्छन्तो

1 दक्षिणतः पितृलिङ्गेन प्राचीनावीत्यवाचीनपाणिः कुर्यात्" आ० ध० सू० वही 2.2.4.5

2 'रौद्रउत्तरोयथा देवताभ्यः' । आ० ध० सू० 2.2.4.6

3 'तयोनानापरिषेचनं धर्मभेदात्' । आ० ध० सू० 2.2.4.7

वितुदस्य प्रेष्याः तेभ्यो बलिं पुष्टिकामोहरामि मयि पुष्टिं पुष्टिपतिः दधातु स्वाहा ।¹

इसके अतिरिक्त कोई बलि नहीं होती। आपस्तम्बधर्मसूत्र में इन बलियों को अर्पित करने वाले के लिए कहा गया है कि जो गृहस्थ एकाग्र मन से इन बलियों और होमों को बतलाये गए नियम अनुसार करता है वह नित्य ही स्वर्ग तथा समृद्धि का सुख पाता है।² बलि प्रदान करने के बाद कुछ अंश भिक्षुक को देना चाहिए। सबसे पहले भोजन अतिथियों को, उसके बाद बालकों को, तत्पश्चात् वृद्धों को, रोगियों को, सम्बन्ध की स्त्रियों तथा गर्भवती स्त्रियों को भोजन कराने का विधान है।³

वैश्वदेव बलि के समय गृहस्वामी तथा गृहस्वामिनी से जो कोई भोजन की याचना करने आता है उन्हें खाली वापिस न भेजकर कुछ न कुछ भोजन अवश्य देना चाहिए।⁴ अगर भोजन देने की कमी हो तो सज्जनों के घर में बैठने के लिए जगह, पाँव धोने के लिए जल, शयन व आसन के लिए तृण और सत्कार के लिए मधुर वचन की कमी कभी नहीं होती इसी से सत्कार करना चाहिए।⁵ इस प्रकार जो पति-पत्नी आचरण करते हैं वे अनेक पुण्य-लोकों को प्राप्त करते हैं।⁶

यदि अतिथि रूप में कोई शूद्र आए तो उसे कोई कार्य सौंपे उसे भी भोजन देना चाहिए। ब्राह्मण के घर में क्षत्रिय और वैश्य के आने पर ब्राह्मण उनके स्वागत के लिए न उठे। यदि घर में शूद्र के लिए भोजन न हो तो राजकुल से ब्राह्मण के दास माँग कर ले आये। जिससे उस अभ्यागत शूद्र का सत्कार हो सके।⁷ वैश्व देव कर्म की समाप्ति पर यदि

1 नक्तमेवात्तमेन वैहायसम्' ।। आ० ध० सू० 2.2.4.8, मनु स्मृ० 3/90

2 'य एतानव्यग्रो यथोपदेशं कुरुते नित्यः स्वर्गःपुष्टिश्च' । आ० ध० सू० 2.2.4.9

3 आ० ध० सू० 2.2.4.10,11,12

4 काले स्वामिनावन्नार्थिनं न प्रत्याचक्षीयाताम् ।। आ० ध० सू० 2.2.4.13

5 अभावे भूमिरुदकं तृणानि इत्यादि, आ० ध० सू० 2.2.4.14

6 आ० ध० सू० 2.2.4.15

7 आ० ध० सू० 2.2.4.17.,18,19, 20, 21

कुत्ते और चाण्डाल भी आवे तो उन्हें भी भोजन का कुछ अंश प्रदान करें।¹ जिस स्थान पर भोजन कराया गया है उस स्थान को झाड़ू से झाड़ कर उच्छिष्ट आदि को एकत्र करके दूर डाल दे और उस स्थान को हथेली को नीचे करके जल से परिषेचन करें तथा जिन पात्रों में भोजन बनाया गया था उन पात्रों को काष्ठ आदि के टुकड़े से अच्छी तरह खुरचकर जल से धोएं व उससे जो अंश खुरचकर निकला था उसको एकत्रित करके घर से उत्तर में एक स्वच्छ स्थान पर रूद्र के लिए एक बलि अर्पित करे।

ऐसा करने से उस गृहस्थ का घर समृद्ध होगा।² इस प्रकार आपस्तम्बधर्मसूत्र में बलि कर्म का विधान बतलाया गया है।

1 आ० ध० सू० 2.2.8.5

2 आ० ध० सू० 2.2.4.24